न्यायालय, राजस्व परिषद, उत्तराखण्ड़, देहरादून।

द्वितीय अपील संख्या–40/2002–03 अन्तर्गत धारा–331(4)भू0रा0अधि0

1– शिव कुमार(मृतक), 1/1. पुनीत शर्मा, 1/2 सुमीत शर्मा पुत्रगण स्व0 शिव कुमार शर्मा, 2. विनोद कुमार पुत्र स्व0 चन्द्रमणी शर्मा, निवासी राजघाट कनखल, परगना ज्वालापुर, तहसील हरिद्वार।

बनाम

1– हरिनन्दन पुत्र बाबूराम शर्मा, निवासी ग्राम जगजीतपुर, परगना ज्वालापुर, तहसील हरिद्वार द्वारा मुख्तारेआम महामण्डलेश्वर स्वामी गणेशानन्द पुरी द्वारा मुख्तारेआम श्री पुरूषोत्तम त्रिपाठी पुत्र राम मनोरथ त्रिपाठी, निवासी साधना सदन कनखल, परगना ज्वालापुर, तहसील व जनपद हरिद्वार, 2. शीलावती(मृतक) विधवा रामस्वरूप, 2/1. अजीत कुमार वालिया दत्तक पुत्र रामस्वरूप, निवासी–जगजीतपुर, 3. बड़ा अखाड़ा पंचायती उदासीन, कनखल, 4. ग्राम सभा, जगजीतपुर, 5. उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा कलेक्टर, हरिद्वार, 6. त्यागमूर्ति जनकल्याण ट्रस्ट समिति द्वारा स्वामी विश्वआत्मानन्द पुरी चेला स्व0 स्वामी गणेशानन्द पुरी साधना सदन, कनखल, जनपद हरिद्वार।

उपस्थित	:	श्री पी0एस0जंगपांगी, सदस्य(न्यायिक)।
अधिवक्ता अपीलकर्तागण	:	श्री पी0के0 गर्ग।
अधिवक्ता प्रतिपक्षी सं0 1	:	श्री विजय कुमार गुप्ता।

निर्णय

यह द्वितीय अपील अपीलकर्तागण शिवकुमार (मृतक) एवं विनोद कुमार द्वारा मूल वाद संख्या–35 वर्ष 1996 अन्तर्गत धारा–229बी भू0रा0अधि0 हरिनन्दन बनाम ग्राम सभा जगजीतपुर व अन्य में सहायक कलेक्टर, प्रथम श्रेणी, हरिद्वार द्वारा पारित निर्णय व आज्ञप्ति दिनांक 11–02–1998 एवं प्रथम अपील संख्या–15 वर्ष 1997–98 शिवकुमार आदि बनाम हरिनन्दन में अपर आयुक्त, सहारनपुर मण्डल द्वारा पारित निर्णय व आज्ञप्ति दिनांक 30–09–1999 के विरूद्ध योजित की गई है।

संक्षिप्त में इस द्वितीय अपील की पृष्ठभूमि निम्न प्रकार है:–

वादी/उत्तरदाता हरिनन्दन द्वारा अपने मुख्तारेआम महामण्डलेश्वर स्वामी गणेशानन्द पुरी के मुख्तारेआम पुरषोत्तम त्रिपाठी पुत्र राम मनोरथ त्रिपाठी के माध्यम से भूमि खसरा संख्या–315 क्षेत्रफल 0–12–0 बीघा पुख्ता स्थित ग्राम जगजीतपुर, परगना ज्वालापुर, तहसील व जिला हरिद्वार का वादी को 21–22 वर्ष के लगातार प्रतिकूल अध्यासन के आधार पर भूमिधर घोषित किये जाने हेतु वाद पत्र दिनांक 08–03–1994 को सहायक कलेक्टर, प्रथम श्रेणी/परगनाधिकारी, हरिद्वार के समक्ष प्रस्तुत किया गया। वादग्रस्त भूमि के खतौनी में

अंकित भूमिधर प्रतिवादी 3 व 4 थे जिन्होंने पृथक–पृथक विक्रय पत्र द्वारा उसे प्रतिवादी संख्या–5 व 6/वर्तमान अपीलकर्तागण के पिता को विक्रय कर दिया गया। वादी का अभिवचन है कि अंकित भूमिधरों के समय से ही उसका वादग्रस्त भूमि पर प्रतिकूल अध्यासन चलता रहा एवं प्रतिवादीगण/मूल भूमिधरों को भूमि विक्रीत करने का कोई अधिकार नही था क्योंकि वादी के भूमिधरी अधिकार परिपक्व हो चुके थे न ही प्रतिवादीगण/अपीलकर्तागण का पिता कथित विक्रय पत्रों के आधार पर वादग्रस्त भूमि पर अध्यासित हो पाया।

तत्कालीन उत्तर प्रदेश सरकार की ओर से वादपत्र को अस्वीकार करते हुए प्रतिवाद पत्र प्रस्तुत किया गया। प्रतिवादीगण/अपीलकर्तागण द्वारा अपने प्रतिवाद पत्र द्वारा वाद को अस्वीकृत किया गया एवं यह अभिवचन प्रस्तुत किया गया कि वादी/उत्तरदाता का वादग्रस्त भूमि पर कभी भी अध्यासन रहा ही नही है न ही उसका इस भूमि से कोई सम्बन्ध रहा है, अतः प्रतिकूल अध्यासन का अभिवाक गलत एवं निराधार है। उनके द्वारा प्रतिवादी संख्या–3 व 4 से वादग्रस्त भूमि क्रय करने के तथ्य का उल्लेख करते हुए वादग्रस्त भूमि पर उनका निरन्तर अध्यासन चला आना भी उल्लिखित किया गया। उन्होंने प्रतिवाद पत्र में यह भी उल्लेख किया कि वादी/उत्तरदाता द्वारा सम्बन्धित विक्रय पत्रों को निरस्त कराने की कोई कार्यवाही नही की गई एवं उक्त विक्रय पत्र के आधार पर चली नामान्तरण की कार्यवाही से सम्बन्धित अपील विचाराधीन है।

वादी एवं प्रतिवादीगण–5 व 6 की ओर से मौखिक साक्ष्य एवं अभिलेखीय साक्ष्य प्रस्तुतीकरण के उपरान्त विद्वान सहायक कलेक्टर ने वादी/उत्तरदाता के विवादित भूमि पर प्रतिकूल अध्यासन का अभिकथन सिद्ध पाया एवं प्रतिवादी संख्या–5 व 6 के पिता के पक्ष में हुए बैनामे को वादी/उत्तरदाता के प्रतिकूल अध्यासन के आधार पर भूमिधरी अधिकार परिपक्व मानकर शून्य माना। तद्नुसार उनके द्वारा वाद अपने आक्षेपित निर्णय व आदेश दिनांक 11–02–1998 द्वारा आज्ञप्त किया गया। विद्वान सहायक कलेक्टर के निर्णय व आज्ञप्ति के विरूद्ध प्रथम अपील आयुक्त, सहारनपुर मण्डल सहारनपुर के समक्ष दिनांक 24–02–1998 को प्रस्तुत की गई जिसे विद्वान अपर आयुक्त, सहारनपुर मण्डल सहारनपुर ने अपने निर्णयादेश दिनांक 30–09–1999 द्वारा अस्वीकृत किया गया। वर्तमान द्वितीय अपील तद्नुसार विद्वान सहायक कलेक्टर, हरिद्वार एवं अपर आयुक्त सहारनपुर के आक्षेपित निर्णय व आज्ञप्ति के विरूद्ध योजित की गई है।

इस द्वितीय अपील के निस्तारण हेतु निम्न पांच विधि के सारवान प्रश्न गठित किये गयेः–

1– क्या वाद अधिकृत/सक्षम व्यक्ति द्वारा योजित किया गया है?

2 क्या परीक्षण न्यायालय बिना विवादयक स्थिरीकृत किये वाद की कार्यवाही संचालित एवं उसे अंततः आज्ञप्त कर सकता था?

3– क्या वाद धारा–49 चकबन्दी अधिनियम से बाधित है?

4— क्या अधीनस्थ न्यायालयों की विवेचना/विश्लेषण व निष्कर्ष विपर्यस्त (perverse) है?

5— क्या दोनो अधीनस्थ न्यायालयों के समवर्ती निष्कर्ष को द्वितीय अपील में चुनौती नही दी जा सकती है?

मैंने दिनांक 21—11—2016 एवं 03—01—2017 को अपीलकर्तागण एवं उत्तरदाता संख्या—1 के विद्वान अधिवक्ताओं की विस्तृत बहस सुनी एवं संगत पत्रावलियों तथा अपीलकर्ता की ओर से प्रस्तुत लिखित बहस का भली भांति अध्ययन किया।

अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि अधीनस्थ न्यायालयों के निर्णय व आज्ञप्ति विपर्यस्त (perverse) है क्योंकि प्रतिकूल अध्यासन के सम्बन्ध में कोई अभिलेखीय साक्ष्य अथवा स्वतंत्र साक्षी नही प्रस्तुत हुआ है जबकि वादग्रस्त भूमि का उनके पिता के पक्ष में दिनांक 22—12—1987 को हुए विक्रय की तिथि से एवं उससे पूर्व प्रतिवादीगण संख्या—3 व 4 का विवादित भूमि पर निरन्तर अध्यासन मौखिक साक्ष्य एवं अभिलेखीय साक्ष्य से सिद्ध है, कि परीक्षण न्यायालय को विक्रय पत्र शून्य घोषित करने का क्षेत्राधिकार नही था, कि वाद का प्रस्तुतीकरण विधिक रूप से नही हुआ है क्योंकि वादी के मुख्तारेआम महामण्डलेश्वर स्वामी गणेशानन्द के मुख्तारेआम पुरषोत्तम त्रिपाठी को वाद योजित करने का कोई अधिकार नही था, कि मूल वाद में विवाद्यक/वाद बिन्दु नही विरचित किये गये है तद्नुसार वाद में विवादित बिन्दुओं पर कोई विनिश्यचन नही हुआ एवं अधीनस्थ न्यायालय द्वारा पारित निर्णय व आज्ञप्ति अवैधानिकता एवं तात्विक अनियमितता से ग्रसित है, कि मूल वाद चकबन्दी प्रक्रिया के 4—5 वर्ष बाद योजित किया गया अतः वाद धारा—49 जोत चकबन्दी अधिनियम से बाधित है, कि वाद योजन से पूर्व धारा—80 सी0पी0सी0 एवं 106 पंचायत राज अधिनियम के नोटिस नही भेजे गये है, कि प्रतिकूल अध्यासन के आरम्भ की तिथि, माह अथवा वर्ष का कोई उल्लेख वाद पत्र में नही है न ही इस सम्बन्ध में कोई साक्ष्य प्रस्तुत हुआ है क्योंकि किसी भी राजस्व अभिलेख में वादी/उत्तरदाता का नाम प्रतिकूल अध्यासन के आधार पर अंकित नही है, कि मौखिक साक्ष्य प्रस्तुत साक्षीगण साधना सदन आश्रम के कर्मचारी है जिनका साक्ष्य विश्वसनीय नही है, कि विद्वान सहायक कलेक्टर ने जिस अभिलेखीय साक्ष्य पर विश्वास व्यक्त किया है वह मूल में नही प्रस्तुत किये गये है एवं उनका विवादित भूमि से क्या सम्बन्ध है स्थापित नही है जबकि समीपवर्ती भूमि भी वादी/उत्तरदाता की है न ही ऐसे अभिलेखीय साक्ष्य को सिद्ध किया गया है एवं कि अपीलकर्ता/प्रतिवादी द्वारा मूल में प्रस्तुत अभिलेखीय साक्ष्य का कोई विवेचना अथवा विश्लेषण परीक्षण न्यायालय ने नही किया है एवं उसके साक्षीगण के साक्ष्य को अविधिक रूप से अमान्य किया है।

दूसरी ओर वादी/उत्तरदाता संख्या—1 के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि विवादित भूमि एक तरफ गंगा तथा तीन तरफ से वादी/उत्तरदाता की भूमि से घिरी है अतः स्पष्ट है कि उसपर अध्यासन वादी/उत्तरदाता का है, कि वादी/उत्तरदाता का प्रतिकूल अध्यासन के आधार पर वादग्रस्त भूमि पर भूमिधरी अधिकार परिपक्व होने के दृष्टिगत

निष्पादित कथित बैनामा शून्य है एवं राजस्व न्यायालय को शून्य बैनामे की उपेक्षा (ignore) करने का क्षेत्राधिकार है, कि धारा–80 सी0पी0सी0 धारा–106 पंचायत राज अधिनियम के नोटिस के सम्बन्ध में परीक्षण न्यायालय से छूट प्राप्त की गई एवं इस सम्बन्ध में सम्बन्धित सरकारी पक्ष को ही आपत्ति करने का अधिकार है, कि वाद विधिवत प्रस्तुत हुआ है एवं मूल वादी स्वयं साक्ष्य में न्यायालय में उपस्थित हुआ है, कि कथित विक्रय पत्र के आधार पर नामान्तरण की कार्यवाही में वादी/उत्तरदाता द्वारा आपत्ति की गई थी एवं इस सम्बन्ध में लेखपाल ने अपने बयान से वादी/उत्तरदाता का अध्यासन स्वीकार किया था, कि विवाद्यक/वाद बिन्दुओं का स्थिरीकरण न होना वाद की कार्यवाही को दूषित नही करता है क्योंकि सभी संगत बिन्दुओं पर विचार किया गया है, कि मुख्तार वाद योजित करने के लिए सक्षम है, कि प क 10 जारी करने सम्बन्धी आधार अधीनस्थ न्यायालय के स्तर पर नही लिया गया, कि प्रतिकूल अध्यासन के आधार पर अधीनस्थ न्यायालयों के समवर्ती निष्कर्ष को द्वितीय अपील में चुनौती नही दी जा सकती है न ही उसमें हस्तक्षेप किया जा सकता है एवं कि चकबन्दी की प्रक्रिया के आधार पर प्रतिकूल अध्यासन आधारित वाद बाधित नही होता है।

दोंनो विद्वान अधिवक्ताओं ने अपने तर्कों के समर्थन में कतिपय न्यायिक दृष्टान्त उद्धरित किये है जिनका समावेश यथास्थान किया जा रहा है।

अब इस स्तर पर गठित विधि के सारवान प्रश्नो के आधार पर इस द्वितीय अपील का विनिश्चयन/अभिनिर्णय किया जा रहा है:–

1– क्या वाद अधिकृत/सक्षम व्यक्ति द्वारा योजित किया गया है?

यह स्वीकार्य तथ्य है कि वाद वादी के मुख्तारेआम महामण्डलेश्वर स्वामी गणेशानन्द पुरी के मुख्तारेआम पुरूषोत्तम त्रिपाठी पुत्र राम मनोरथ त्रिपाठी द्वारा योजित किया गया अर्थात् मुख्तारेआम के मुख्तारेआम ने वाद प्रस्तुत किया है। वादी यद्यपि मौखिक साक्ष्य हेतु परीक्षण न्यायालय में उपस्थित हुआ है परन्तु वह वाद क्यों नही योजित कर पाया यह स्पष्ट नही है अथवा उसके द्वारा पुरूषोत्तम त्रिपाठी जो स्वामी गणेशानन्द पुरी का मुख्तारेआम है के पक्ष में मुख्तारनामा सीधे–सीधे क्यों नही किया गया स्पष्ट नही है। वादी का मुख्तारेआम महामण्डलेश्वर स्वामी गणेशानन्द पुरी वाद योजित करने के लिए अधिकृत था परन्तु प्रश्न यह उठता है कि वादी के मुख्तारेआम को यह शक्ति अपने मुख्तारेआम को प्रदान करने का अधिकार प्राप्त था। मुख्तार (attorney) मूल व्यक्ति (principal) का प्रतिनिधि (agent) है अर्थात् वह प्रत्यायोजित शक्तियों का प्रयोग करता है। क्या वह प्रत्यायोजित शक्तियों का पुनः प्रत्यायोजन कर सकता था? मेरी राय में प्रत्यायोजित शक्तियों का पुनः प्रत्यायोजन नही किया जा सकता है जैसा कि एक विधिक उक्ति कि **delegata potestas non potest delegari** अर्थात् "प्रत्यायोजित शक्तियों का और प्रत्यायोजन नही" से स्पष्ट है। इस क्रम में वादी/उत्तरदाता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धरित मा0 सवौच्च न्यायालय द्वारा एस0 केसरी हनुमान गौड़ बनाम अंजुम जेहान व अन्य 2013(98) ए0एल0आर0 241 में प्रतिपादित न्यायिक सिद्धान्त कि "मुख्तारेआम मुख्य व्यक्ति की ओर से मौखिक साक्ष्य परीक्षण नही करा सकता है

परन्तु मुख्य व्यक्ति द्वारा किये गये मुख्तारनामे के अनुसार किये गये कृत्यों के सम्बन्ध में साक्ष्य परीक्षण करा सकता है'' आलोच्य वाद में प्रासंगिक नही है क्योंकि मा0 सर्वोच्च न्यायालय का मुख्तारेआम से आशय स्पष्टतः मुख्य व्यक्ति (principal) द्वारा नियुक्त मुख्तार से है जबकि आलोच्य वाद मुख्तारेआम के मुख्तारेआम द्वारा योजित किया गया। एक अन्य न्यायिक सिद्धान्त कि ''मुख्तारनामा नही प्रस्तुत हुआ–यदि परीक्षण न्यायालय अथवा प्रथम अपीलीय न्यायालय में एतद्सम्बन्धी तर्क/अभिवाक नही प्रस्तुत किया गया तो वह पहली बार उच्च न्यायालय में नही ग्राह्य होगा'' विनिता एस0 राव बनाम मैसर्स एसेन कॉरपोरेट सर्विस प्रा0लि0 व अन्य, ए0आई0आर0 2015 सुप्रीम कोर्ट 882, का जंहा तक प्रश्न है यह न्यायिक सिद्धान्त भी आलोच्य वाद में प्रासंगिक नही है क्योंकि मुख्तारनामे के न प्रस्तुत होने का बिन्दु इस द्वितीय अपील में नही उठाया गया है। इस सम्बन्ध में अपीलकर्तागण/प्रतिवादीगण के विद्वान अधिवक्ता ने मा0 उच्च न्यायालय, इलाहाबाद की लक्ष्मीपति सेकसरिया बनाम सप्तम् अतिरिक्त जिला जज, अलीगढ़ व अन्य में दी गई न्यायिक व्यवस्था कि '' न्यासी को अपनी शक्ति का प्रत्यायोजन का अधिकार नही है'' आलोच्य वाद में पूर्णतः प्रासंगिक नही है क्योंकि इसमें मुख्तारेआम के द्वारा नियुक्त मुख्तारेआम की शक्तियों का प्रश्न निहित है न कि न्यासियों की शक्तियों का। तद्नुसार वाद पत्र सक्षम व्यक्ति द्वारा नही प्रस्तुत किया गया। इस तथ्य एवं इससे सम्बन्धित विधिक स्थिति का दोंनो अधीनस्थ न्यायालयों ने सम्यक विवेचन व विश्लेषण नही किया है एवं उनका एतद सम्बन्धी निष्कर्ष अविधिक है। वाद इसी आधार पर अस्वीकृत अथवा वापस किये जाने योग्य था। तद्नुसार वाद बिन्दु संख्या–1 नकारात्मक विनिश्चित किया जाता है

2 क्या परीक्षण न्यायालय बिना विवाद्यक स्थिरीकृत किये वाद की कार्यवाही संचालित एवं उसे अंततः आज्ञप्त कर सकता था?

यह भी स्वीकार्य तथ्य है कि मूल वाद में वादपत्र एवं प्रतिवाद पत्रों के आधार पर विवादित वाले वाद बिन्दु नही स्थिर किये गये। इस सम्बन्ध में आदेश–14 नियम–1(5) व्यवहार प्रक्रिया संहिता के प्राविधान अत्यंत स्पष्ट है। जब द्वितीय अपील के स्तर पर विधि के सारवान प्रश्नों को गठित किये जाने के बाध्यकारी प्राविधान है तो मूल वाद में विवाद्यक/वाद बिन्दु न स्थिर किया जाना विधिक नही ठहराया जा सकता। इसके अतिरिक्त आदेश–14 नियम–(2) वाद में सभी विवाद्यकों पर निर्णय सुनाये जाने का प्राविधान करता है। जब विवाद्यक ही स्थिर नही किये गये तो इस प्राविधान के पालन का तो प्रश्न ही नही था। यह आज्ञापक प्रावधान है जिसका परीक्षण न्यायालय ने पालन नही किया है एवं जिसपर विद्वान आयुक्त ने कोई विवेचन नही किया है। इस सम्बन्ध में वादी/उत्तरदाता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धरित मा0 उच्च न्यायालय, इलाहाबाद के मौहम्मद अहमद बनाम करामत हुसैन व अन्य 2016 (133) आर0डी0 276, में उल्लिखित व्यवस्था कि '' विवाद्यक विरचित करने का लोप उस समय वाद के लिए घातक नही होता है जब पक्षकार अपने प्रतिद्वंदी मामले को पूर्ण से जानते हुए विचारण में गये थे और न केवल मामले के समर्थन में साक्ष्य प्रस्तुत किये थे, वरन् विरोधी पक्षकार के मामले को चुनौती दिये थे'' का जंहा तक प्रश्न है मा0 उच्च न्यायालय के

उक्त उद्गार का सम्मान करते हुए यह स्पष्ट किया जाता है कि आलोच्य वाद में विवादयक स्थिरीकरण एवं प्रत्येक विवादयक के विनिश्चियन से सम्बन्धित सी0पी0सी0 के पूर्व में उल्लिखित अधिनियमित स्पष्ट विधिक प्राविधानों का पालन नही किया गया है। अतः यह वाद बिन्दु नकारात्मक विनिश्चित किया जाता है

3— **क्या वाद धारा–49 चकबन्दी अधिनियम से बाधित है?**

मूल वाद प्रतिकूल अध्यासन के आधार पर भूमिधरी अधिकारों की घोषणा हेतु योजित किया गया जिसमे यह देखा जाना आवश्यक है कि 12 वर्ष का प्रतिकूल अध्यासन कब से आरम्भ हुआ एवं कब तक चला। अतः यदि चकबन्दी क्रियाओं के समय यह अवधि पूरी नही होती है और ऐसा अध्यासन चकबन्दी के उपरान्त भी बना रहता है तो ऐसे में धारा–49 जोत चकबन्दी अधिनियम की वर्जना मूल वाद में लागू नही होगी क्योंकि वाद कारण चकबन्दी प्रक्रिया के उपरान्त ही उत्पन्न होगा। इस स्तर पर भी अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता चकबन्दी प्रक्रिया कब चली बताने में असमर्थ है एवं दोंनो अधिवक्ता यह स्वीकार करते है कि वादग्रस्त भूमि/खसरा नं0–315 चकबन्दी से प्रभावित नही हुआ अर्थात् वह यथावत बना रहा। विधि एवं तथ्यों के उक्त स्थिति के दृष्टिगत मेरे मतानुसार वाद धारा–49 चकबन्दी अधिनियम से बाधित नही है। तद्नुसार यह विधिक सारवान प्रश्न नकारात्मक निर्णीत किया जाता है।

4— **क्या अधीनस्थ न्यायालयों की विवेचना/विश्लेषण व निष्कर्ष विपर्यस्त (perverse) है? एवं**

5— **क्या दोनो अधीनस्थ न्यायालयों के समवर्ती निष्कर्ष को द्वितीय अपील में चुनौती नही दी जा सकती है?**

विधि के उक्त दोनो सारवान प्रश्नों के मध्य अन्तरसम्बन्ध होने के दृष्टिगत दोनो प्रश्नों को एक साथ विनिश्चयन एवं निर्णीत किया जा रहा है।

यह सुस्थापित विधि है कि दो अधीनस्थ न्यायालयों के समवर्ती निष्कर्ष को द्वितीय अपील में सामान्यतया विक्षुब्ध (disturb) नही किया जा सकता है परन्तु यदि ऐसा निष्कर्ष विपर्यस्त **(perverse)**, अविधिक अथवा असंगत हो तो उसका द्वितीय अपील में पुनर्मूल्यांकन हो सकता है। उत्तरदाता/वादी के विद्वान अधिवक्ता ने इस तर्क पर अत्यंत बल दिया है कि आलोच्य प्रकरण में प्रतिकूल अध्यासन के आधार पर वादी/उत्तरदाता के विवादित भूमि में भूमिधर अधिकार परिपक्व होने सम्बन्धी निष्कर्ष व निर्णय एक समवर्ती निष्कर्ष व निर्णय है जिसका पुनर्मूल्यांकन यह न्यायालय इस अपील में नही कर सकता है। वादी/उत्तरदाता का प्रतिकूल अध्यासन सम्बन्धी अभिवचन पर दोंनो अधीनस्थ न्यायालयों का निष्कर्ष तथ्य का समवर्ती निष्कर्ष पर ऐसे निष्कर्ष के विपर्यस्त, अविधिक अथवा असंगत होने की स्थिति में इसे द्वितीय अपील में अवश्य पुनर्मूल्यांकित किया जायेगा। तद्नुसार मैं कदाचित विद्वान अधिवक्ता के इस तर्क से सहमत नही हूँ। द्वितीय अपील एक वैधानिक उपचार **(statutory remedy)** एवं वैधानिक अधिकार है तदनुसार द्वितीय अपीलीय न्यायालय को

आक्षेपित निर्णय/आज्ञप्ति की सम्पूर्णता में पुनर्मूल्यांकन करने का अधिकार इस रूप में है। यह सही है कि दो अधीनस्थ न्यायालयों के समवर्ती निर्णयो को उनके अन्यथा किसी भांति विपर्यस्त, अविधिक अथवा विरोधाभाषी न होने की स्थिति में सामान्यतया द्वितीय अपील में विक्षुब्ध (disturb) नही किया जा सकता परन्तु क्या ऐसे समवर्ती निर्णय व निष्कर्ष को विपर्यस्त, विरोधाभाषी अथवा अविधिक होने की स्थिति में भी उसे यथावत रखा जायेगा? मैं आश्वस्त हूँ कि इसका उत्तर स्पष्ट रूप से नकारात्मक है। कथित समवर्ती निष्कर्ष व निर्णय किस प्रकार लिया गया द्वितीय अपील में अवश्य रूप से देखा जायेगा अन्यथा द्वितीय अपील के विधिक उपाय/उपचार/अधिकार का कोई अर्थ नही रह जायेगा। इस सम्बन्ध में वादी/उत्तरदाता के विद्वान अधिवक्ता ने मा0 सर्वोच्च न्यायालय द्वारा लक्ष्मीदेवम्मा व अन्य बनाम रंगनाथ व अन्य, 2015 (127) आर0डी0 529 में प्रतिपादित न्यायिक सिद्वान्त की " तथ्य के समवर्ती/सुसंगत निष्कर्षों को तब तक विचलित नही किया जा सकता है कि जब तक कि आलेखित निष्कर्षों को अनुचित एवं विपर्यस्त न पाया जाए" का जंहा तक का प्रश्न है मा0 सर्वोच्च न्यायालय की उक्त व्यवस्था इस निर्णय में अंकित किये जा रहे उपपत्ति/निष्कर्ष का समर्थन ही करती है क्योंकि मा0 न्यायालय ने ऐसे निष्कर्षों को असंगत/विपर्यस्त न होने की दशा ही में न विचलित करने का सिद्धान्त प्रतिपादित किया है अर्थात् यदि ऐसा निष्कर्ष असंगत/विपर्यस्त है तो उसे विचलित/विक्षुब्ध किया जा सकता है। इस क्रम में विद्वान अधिवक्ता द्वारा मा0 उच्च न्यायालय, इलाहाबाद के द्वारा बालादीन व अन्य बनाम लल्लूमल जैन व अन्य, 2013 (121) आर0डी0 59 में प्रतिपादित न्यायिक सिद्धान्त की "सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908–धारा 100 की स्वीकार्यता–उच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार नही है कि तथ्य के प्रश्नों को हस्तक्षेपित करे जिन्हें साक्ष्यों के उचित परिशीलन के द्वारा न्याय–निर्णीत किया गया हो–अवर न्यायालयों के अंकित किये गये निष्कर्षों में अविधिकता अथवा अनियमितता का होना–तथ्यों के निष्कर्षों के लिए पर्याप्त नही है–द्वितीय अपील को केवल विधि के प्रश्न की अभिग्रस्तता की अवस्था में ही स्वीकार्य किया जा सकता है–साक्ष्यों के निष्कर्ष में उसी दशा में हस्तक्षेप किया जा सकता है जब किसी प्रमुख अथवा सुसंगत निष्कर्ष को विमर्शित न किया गया हो तथा यदि किया भी गया हो तो विपरीत निष्कर्ष प्राप्त किया गया हो अथवा निष्कर्ष को ऐसे अग्राह्य साक्ष्य पर निर्भर करके प्राप्त किया गया हो जिसे यदि अपेक्षित कर दिया जाता तो विपरीत निष्कर्ष प्राप्त होता" का जंहा तक सम्बन्ध है यह न्यायिक व्यवस्था भी इस निर्णय के निष्कर्ष का समर्थन ही करती है क्योंकि मा0 उच्च न्यायालय ने स्पष्ट किया है कि साक्ष्यों के निष्कर्ष में उसी दशा में हस्तक्षेप किया जा सकता है जब किसी प्रमुख एवं सुसंगत निष्कर्ष को विमर्शित न किया गया हो तथा यदि किया गया हो अथवा निष्कर्ष को ऐसे अग्राह्य साक्ष्य पर निर्भर करके प्राप्त किया गया हो जिसे यदि उपेक्षित कर दिया जाता तो विपरीत निष्कर्ष प्राप्त होता। आलोच्य प्रकरण में भी इसी दृष्टि से तथ्य के समवर्ती निष्कर्ष को देखा जाना है।

आलोच्य वाद मात्र इस आधार पर आज्ञप्त किया गया है कि वादी/उत्तरदाता का वादग्रस्त भूमि में भूमिधरी अधिकार प्रतिकूल अध्यासन के आधार पर वर्ष 1987 से पूर्व ही परिपक्व हो गये। इस सम्बन्ध में विद्वान सहायक कलेक्टर ने जो विश्लेषण/विवेचन किया है वह उनके निर्णय के पृष्ठ–4 के अंतिम प्रस्तर एवं पृष्ठ–5 के प्रारम्भिक डेढ़ पंक्तियों में अंकित है जो इस प्रकार हैः–

"विवादित भूमि से मिली वादी की अन्य भूमि है विवादित भूमि की बावत वादी द्वारा दाखिल सिंचाई की रसीद दिनांक 02–02–94, 17–03–81, 19–05–84, 31–07–87, 15–01–87, 13–05–89, 03–07–89, 04–02–89, 31–01–90, 23–06–89 से यह साबित होता है कि वादी का कब्जा विवादित भूमि काफी पुराना है और वादी को वर्ष 1987 से पूर्व ही विवादित भूमि पर संक्रमणीय भूमिधर के अधिकार प्राप्त हो चुके थे"।

विद्वान सहायक कलेक्टर ने तद्नुसार वादी/उत्तरदाता की ओर से प्रस्तुत उक्त सिंचाई की रसीदों की नोटरी द्वारा प्रमाणित प्रतियों पर विश्वास व्यक्त किया एवं ये रसीदें स्पष्ट रूप से दिनांक 02–02–94, 17–03–81, 19–05–84, 31–07–87, 15–01–87, 13–05–89, 03–07–89, 04–02–89, 31–01–90, 23–06–89 से सम्बन्धित है। वर्ष 1987 व उससे पूर्व के कथित रसीदें साक्ष्य में ग्राह्य होने की दशा में तो वर्ष 1987 तक के कथित अध्यासन का प्रमाण हो सकती है परन्तु वर्ष 1989 व 90 की रसीदों से यह निष्कर्ष कैसे अंकित किया जा सकता है कि वादी/उत्तरदाता का वादग्रस्त भूमि पर प्रतिकूल अध्यासन के आधार पर वर्ष 1987 में ही भूमिधरी अधिकार परिपक्व हो गये? प्रथमतः उक्त रसीदें साक्ष्य में कैसे ग्रहण एवं पठनीय की गई स्पष्ट नही है। भारतीय साक्ष्य अधिनियम के अन्तर्गत अभिलेखीय साक्ष्य में मूल अभिलेख ही ग्राह्य एवं पठनीय है। तद्नुसार उक्त रसीदें साक्ष्य में न तो ग्राह्य हो सकती न करनी थी। इसके अतिरिक्त इंगित विसंगतियों का कोई संज्ञान नही लिया गया। आश्चर्य की बात यह भी है कि अभिलेखीय साक्ष्यों को ग्रहण करने के सम्बन्ध में अथवा उसपर प्रदर्श डालने के सम्बन्ध में कोई प्रकाश नही डाला गया है क्योंकि इनपर प्रदर्श संख्या अंकित की ही नही गयी। इस सम्बन्ध में अपीलकर्तागण/प्रतिवादीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा मा0 उच्च न्यायालय, इलाहाबाद द्वारा श्रीमती बतूलन बेगम बनाम किशनलाल 1998 आर0डी0 (89) 6 में प्रतिपादित व्यवस्था कि "अभिलेखों की छायाप्रतियां साक्ष्यों में ग्राह्य नही है–ऐसी छायाप्रतियां कितने ही मौखिक साक्ष्य से समर्थित होने पर भी साक्ष्य में ग्राह्य नही है" आलोच्य प्रकरण पर अक्षरशः लागू होती है। विद्वान सहायक कलेक्टर ने अग्राह्य साक्ष्यों पर निर्भर होकर वाद आज्ञप्त किया है जो कि असंगत, विपर्यस्त व अविधिक है।

प्रतिकूल अध्यासन के आधार पर स्वामित्व/भूमिधरी अधिकार परिपक्व होने सम्बन्धी विधिक सिद्धान्त एक अतिचारी को स्वामित्व/भूमिधरी अधिकार प्रदान करता है जो जैसा कि उच्चतर न्यायालयों द्वारा समय समय पर मत व्यक्त किया गया है कि एक अवैधानिकता अथवा दुष्कृति को विधि मान्यता प्रदान करने के तुल्य है। ऐसा विवादों को एक निश्चित समयावधि के भीतर समाप्त करने की मंशा अथवा समयावधि की विधि से जनित है

एवं अतिचारी के पक्ष में कोई साम्या नही होती है। तद्नुसार प्रतिकूल अध्यासन के आधार पर स्वामित्व/भूमिधरी अधिकार प्रदान करने के लिए अत्यधिक सावधानी बरतना आवश्यक है एवं इस सम्बन्ध में वादी के स्पष्ट अभिवचन होने चाहिए एवं उसे साक्ष्य द्वारा स्पष्टतः एवं पूर्णतः सिद्ध किया जाना चाहिए। प्रतिकूल अध्यासन बलपूर्वक (forcible), प्रत्यक्ष/डंके की चोट पर (open) अनवरत (continuous), शत्रुतापूर्ण (hostile), एकांतिक(exclusive) एवं कुख्यात (notorious) होना चाहिए जिसको सिद्ध करने का भार पूर्णतः ऐसा अभिवाक/अभिवचन करने वाले अर्थात् वादी पर है। आलोच्य वाद में न तो उक्त प्रकार का अभिवचन हुआ है न ही कथित प्रतिकूल अध्यासन सिद्ध किया गया है। कब एवं कैसे प्रतिकूल अध्यासन प्रारम्भ हुआ, कैसे ऐसा अध्यासन प्रतिकूल रहा एवं कितनी अवधि का रहा, कब कब मूल भूमिधर द्वारा इस सम्बन्ध में प्रतिरोध/विरोध किया गया एवं कैसे उसके प्रतिरोध/विरोध के बाद भी ऐसा प्रतिकूल अध्यासन बलपूर्वक निरन्तर बना रहा यह सिद्ध नही है। यंहा तक कि किस तिथि से अथवा किस माह में या किस वर्ष से ऐसा प्रतिकूल अध्यासन प्रारम्भ हुआ भी न तो अभिवचनों में अभिकथित है न ही सिद्व किया गया है। विद्वान सहायक कलेक्टर ने तो मात्र दो तीन पंक्तियों में अग्राह्य अभिलेखीय साक्ष्य को ग्राह्य कर एक अत्यंत सरसरी एवं तदर्थ निष्कर्ष अंकित कर दिया गया है। विद्वान अपर आयुक्त ने प्रथम अपील में वादी/उत्तरदाता के मौखिक साक्ष्य को विश्वसनीय माना है एवं अपीलकर्ता/प्रतिवादी के मौखिक साक्ष्य अविश्वसनीय माना है। प्रतिवादी पक्ष के साक्षीगण लेखपाल को छोड़कर यदि स्वतंत्र साक्षी नही थे तो वादीपक्ष के साक्षी को कैसे विश्वसनीय एवं स्वंतत्र माना गया स्पष्ट नही है क्योंकि वे भी वादीपक्ष से सम्बद्ध थे। उनका हित वादीपक्ष से जुड़ा था। लेखपाल स्वतंत्र साक्षी था उसके साक्ष्य को क्यों नही प्रमाणित एवं विश्वसनीय माना गया भी स्पष्ट नही किया गया है। वैसे भी अपीलकर्तागण/प्रतिवादीगण के पिता विक्रय पत्र के आधार पर एवं उससे पूर्व विक्रेता मूल भूमिधर के पक्ष में अध्यासन की उपधारणा होती है। विवादित भूमि के एक तरफ से गंगा नदी एवं तीन तरफ से वादी/उत्तरदाता की भूमि से घिरे होने मात्र से अवधारणा यह कैसे की जा सकती है कि अपीलकर्तागण/प्रतिवादीगण का वादग्रस्त भूमि में अध्यासन नही है। यदि ऐसा होता तो यह स्थिति तो मूल भूमिधर एवं उसके पूर्व पुरूषों के समय में भी रही होगी। विशेष रूप से उस स्थिति में जब दर्ज भूमिधरों को उनसे किस प्रकार अध्यासन लिया गया एवं ऐसा अध्यासन प्रतिकूल कैसे हुआ सिद्ध न हो। विद्वान अपर आयुक्त ने यद्यपि अभिलेखीय साक्ष्य पर कोई प्रकाश नही डाला है परन्तु अपने विवेचन एवं विश्लेषण में प्रतिकूल अध्यासन के आधार पर भूमिधरी अधिकार परिपक्व होने सम्बन्धी पूर्व में वर्णित व विवेचित अवयवों (ingredients) एवं उनको सिद्ध करने सम्बन्धी विशिष्टियों पर कोई टिप्पणी नही की है। इस स्थिति को अपीलकर्तागण/प्रतिवादीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धरित मा0 राजस्व परिषद, उत्तर प्रदेश की करीमूल हसन बनाम अंसार अहमद, आर0डी0 1997 पृष्ठ 394 की व्यवस्था कि " वादी द्वारा बलपूर्वक अध्यासन लिये जाने, प्रतिकूल अध्यासन आरम्भ होने का सही समय, उसका आधार एवं अवधि न स्पष्ट किये जाने की अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा

उपेक्षा किये जाने की स्थिति में तथ्य सम्बन्धी उनके समवर्ती निष्कर्ष स्थिर रहने योग्य नही होता है"। मा0 राजस्व परिषद, उत्तर प्रदेश की ही न्यायिक व्यवस्था श्रीमती फुलवा व अन्य बनाम बाबा व अन्य, आर0डी0 1967 पेज 304, जिसमें मा0 उच्च न्यायालय, पंजाब के द्वारा कस्तूरी बनाम छुन्नीलाल में अवधारित व्यवस्था कि " The possession necessary to suport a claim of title by prescription must be adverse, that is, it must be actual, uninterrupted, open and notorious, hostile and exclusive. If any of these elements is lacking, title by adverse possession cannot ripen." आलोच्य वाद में सटीक है क्योंकि इसमें उक्तानुसार प्रतिकूल अध्यासन सिद्ध नही हुआ है। एक अन्य न्यायिक व्यवस्था, बदरी व अन्य बनाम श्रीमती रामरती व अन्य, आर0डी0 1977 पेज 224 राजस्व परिषद, उत्तर प्रदेश में प्रतिपादित सिद्धान्त कि "प्रतिकूल अध्यासन की निरन्तरता की कल्पना नही की जा सकती है–प्रतिकूल अध्यासन का अभिवाक प्रस्तुत करने वाले व्यक्ति को अपना वर्षानुवर्ष अध्यासन विशिष्ट रूप से प्रमाणित करना होता है" उक्त स्थिति को सम्पुष्ट एवं समर्थित करती है। तद्नुसार दोनो अधीनस्थ न्यायालयों का प्रतिकूल अध्यासन सम्बन्धी निष्कर्ष एवं निर्णय अत्यन्त सरसरी होने व साक्ष्य आधारित न होने के दृष्टिगत विपर्यस्त है एवं विधिसम्मत नही है।

दूसरी ओर अपीलकर्ता/उत्तरदाता की पक्ष की ओर से अभिलेखीय साक्ष्य में प्रस्तुत रसीद सिंचाई दिनांक 07–03–94, 07–12–96, 06–09–96, 09–01–96, 14–09–96, 06–07–93, 23–04–94, 02–09–96, 03–09–95, 29–03–95, एवं मालगुजारी रसीद दिनांक 07–12–96, 14–09–96 एवं सिंचाई की पासबुक आदि मूल में प्रस्तुत किये गये है। विद्वान सहायक कलेक्टर ने अपीलकर्ता/प्रतिवादी की ओर से प्रस्तुत साक्ष्य का न तो कोई संज्ञान लिया है न विवेचन/विश्लेषण किया है। उनके द्वारा क्यों प्रतिवादी पक्ष के साक्ष्य को उपेक्षित किया गया यह स्पष्ट नही है जबकि अभिलेखीय साक्ष्य में सभी उक्त वर्णित अभिलेख मूल में प्रस्तुत हुए है। मौखिक साक्ष्य में विशेष रूप से हल्का लेखपाल का साक्ष्य तटस्थ एवं अति महत्वपूर्ण है जिसका कोई संज्ञान नही लिया गया है। विद्वान अपर आयुक्त ने भी लेखपाल प्रकाशवीर के मौखिक साक्ष्य का कोई संज्ञान नही लिया तद्नुसार यथापूर्व में उल्लिखित दोंनो अधीनस्थ न्यायालयों का प्रतिकूल अध्यासन के आधार पर वादी/उत्तरदाता का वादग्रस्त भूमि में भूमिधरी अधिकार परिपक्व होने सम्बन्धी निष्कर्ष विपर्यस्त है जो स्थिर रहने योग्य नही है।

वादी हरिनन्दन अथवा उसके मुख्तारेआम द्वारा वाद योजित न किया जाना एवं हरिनन्दन द्वारा पुरूषोत्तम त्रिपाठी के पक्ष में इस हेतु मुख्तारनामा न किया जाना फिर भी उसके द्वारा हरिनन्दन की ओर से वाद योजित किया जाना अत्यंत रहस्यमयी है जो वाद की परिस्थितियों को संदिग्ध बनाता है। कहीं यह एक परोक्ष वाद (proxy suit) का उदाहरण तो नही?

उक्त विमर्श, विश्लेषण व विवेचन के आलोक में विधि का सारवान प्रश्न संख्या–4 सकारात्मक एवं विधि का सारवान प्रश्न संख्या–5 इस आशय से निर्णीत होता है कि

वाद से स्पष्ट नही है क्योंकि वादी एवं प्रतिवादीगण में से एक व्यक्ति मौखिक साक्ष्य हेतु उपस्थित हुआ है। वैसे वाद वादी/उत्तरदाता का है जिसे सिद्ध करने का भार उसका था जो यथापूर्व में विवेचित उनमोचित नही हुआ है। हां, इतना जरूर है कि मूल भूमिधर जिन्होंने अपनी भूमि अपीलकर्तागण/प्रतिवादीगण के पिता को बेची थी उनके द्वारा कोई प्रतिवाद नही किया गया है न ही वे मौखिक साक्ष्य में उपस्थित हुए है। यह तार्किक है कि जो व्यक्ति अपनी भूमि विक्रीत कर चुका हो वे इतनी लम्बी अवधि बाद योजित वाद में प्रतिवाद करने अथवा साक्ष्य देने का कष्ट क्यों उठाये। विद्वान अधिवक्ता द्वारा 2006 यू0ए0डी0 331 राजस्व परिषद, उत्तराखण्ड, 2005 (99) आर0डी0 661 सर्वोच्च न्यायालय में उद्धरित न्यायिक व्यवस्थाओं का जंहा तक प्रश्न है वर्तमान द्वितीय अपील में सारवान विधि के प्रश्न ही विधिवत विचरित किये गये है तद्नुसार किसी नये बिन्दु व आपत्ति को प्रथम बार द्वितीय अपील में लिये जाने की स्थिति नही है। जब बिना विवादयक विरचित किये एवं विवादयक वार वाद निर्णीत न हुआ हो निबंधात्मक निर्णय को सम्पूर्णता में प्रथम एवं द्वितीय अपील में चुनौती दिये जाने की स्थिति में किसी भी बिन्दु अथवा आपत्ति को द्वितीय अपील में प्रथम बार उठाने का प्रश्न कंहा रह जाता है। विधिक प्राविधानों का अपना महत्व है। यदि विवादयक स्थिर कर विवादयक वार निर्णय किया गया होता तो इस सम्बन्ध में स्पष्टता होती। जंहा तक उनके द्वारा उद्धरित, 2016 (115) ए0एल0आर0–196, सुप्रीम कोर्ट में उद्धरित व्यवस्था का प्रश्न है प क 10 के सम्बन्ध में मंतव्य पूर्व में दिया जा चुका है। विधिक बिन्दुओं के अतिरिक्त किसी तथ्यात्मक बिन्दु को प्रथम बार द्वितीय अपील में ग्राह्य नही किया गया है। वैसे विधि सम्बन्धी बिन्दु द्वितीय अपील में प्रथम बार उठाये जाने के सम्बन्ध में कोई वर्जना नही होती है।

उपर्युक्त विमर्श, विवेचन एवं विश्लेषण से स्पष्ट है कि वाद सक्षम व्यक्ति द्वारा नही योजित किया गया है, वाद में विवादयक स्थिरीकृत नही किये गये है एवं प्रतिकूल अध्यासन सिद्ध नही है। तद्नुसार अपील स्वीकारणीय है एवं आक्षेपित निर्णय व आज्ञप्ति अपास्त होने योग्य है।

आदेश

द्वितीय अपील स्वीकार की जाती है एवं दोनों अधीनस्थ न्यायालयों के निर्णय व आज्ञप्ति दिनांक 30–09–1999 एवं 11–02–1998 अपास्त किये जाते हैं। अवर न्यायालयों की पत्रावली वापस तथा इस न्यायालय की पत्रावली वापस हो।

(पी0एस0जंगपांगी)
सदस्य(न्यायिक)

आज दिनांक 17–01–2017 को खुले न्यायालय में उद्घोषित, हस्ताक्षरित एवं दिनांकित।

(पी0एस0जंगपांगी)
सदस्य(न्यायिक)